National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(60): 284-287
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

हंसराज महावर
शोधार्थी (संस्कृत),
संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राज.)

शोध निर्देशिका
डॉ. अल्पना शर्मा
सह-आचार्य,
संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राज.)

Correspondence:
हंसराज महावर
शोधार्थी (संस्कृत),
संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राज.)

अभिनव-मेघदूतम् का अंगी रस: विप्रलम्भ श्रृंगार

हंसराज महावर, डॉ. अल्पना शर्मा

सारांश- 'अभिनव-मेघदूतम्' आधुनिक युगीन दूतकाव्यों की परम्परा में रचा गया एक दूतकाव्य अथवा संदेशकाव्य है, जो कि आधुनिक युग के संस्कृत महाकवि एवं विद्वान् वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े द्वारा रचित खण्डकाव्य/गीतिकाव्य विधा का काव्य है। इसका कथानक काश्मीर देश के एक राजपुरुष (राजदूत) और उसकी प्रिया पत्नी के वियुक्त होने पर आधारित होने से काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगारका खूब परिपाक हुआ है, परिणामस्वरूप काव्य विप्रलम्भ श्रृंगारप्रधान हो गया है, इसीलिए काव्य का प्रमुख अथवा अंगीरस विप्रलम्भ श्रृंगारहै। जैसा कि दूतकाव्य परम्परा के अधिकांश अथवा लगभग सभी काव्यों में देखा जाता है कि वे वियोग श्रृंगारप्रधान होते हैं। प्रस्तुत काव्य में एक-दूसरे से दूर रह रहे नायक एवं नायिका- दोनों की ही विरह दशा के मार्मिक चित्रण में इस रस का चरम परिपाक अनेक पद्यों में देखा गया है, जो कि कवि के और काव्य के रस वैशिष्ट्य का सूचक है। प्रस्तुतालेख में अभिनव-मेघदूतम् में निहित विप्रलम्भ श्रृंगारका गवेषणात्मक विवेचन किया गया है।

कुंजी शब्द- अभिनव-मेघदूतम्, अंगी या मुख्य रस, विप्रलम्भ/वियोग श्रृंगार, रस-परिपाक, नायक-नायिका, विरह-पीड़ित, मार्मिक दशा, दूतकाव्य, संदेशवाहक मेघ।

शोधपत्र- 'अभिनव-मेघदूतम्' आधुनिक युगीन संस्कृत विद्वान् एवं महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े द्वारा दूतकाव्य परम्परा में रचित एक आधुनिक दूतकाव्य है, जो किखण्डकाव्य/गीतिकाव्य विधा में निबद्ध कुल 158 पद्यों की रचना है। इसके पूर्वमेघ में 90 तथा उत्तरमेघ में 68 पद्य हैं और वे सभी पद्य मंदाक्रान्ता छंद में निबद्ध हैं। काव्य का कथानक क्षितिधर नामक राजपुरुष (राजदूत) और उसकी प्रिया पत्नी के विरह पर आधारित है, जिसमें नायक राजकार्यवशात् काश्मीर से मलयदेश के लिए आता है और वहाँ उसे कार्यसिद्धि में विलम्ब होने से अधिक दिनों तक निवास करना पड़ता है। वहाँ निवास के दौरान वह वर्षाकालिक मेघ को देखकर अपनी चिरविरहिणी पत्नी का स्मरण कर उसके प्रति चिन्तित हो उठता है और आकाश में मंडराते हुए मेघ को देखकर अपना संदेश प्रेषित करने हेतु उस मेघ को दूतरूपेण नियुक्त कर अपना संदेश भेजता है।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"[1] के अनुसार 'रस से युक्त वाक्य ही काव्य है' तथा वही काव्य की आत्मा है। अतैव प्रत्येक काव्य में रस की स्थिति अवश्यमेव होती ही है। प्रस्तुत काव्य में गुम्फित कथानकानुसार संदेश भेजने के उपक्रम में नायक द्वारा मेघ के समक्ष रखी गई अपनी याचना, अपनी और अपनी प्रिया पत्नी की अत्यन्त मार्मिक विरहदशा एवं लम्बे मार्ग को तय करके जाते हुए मेघ द्वारा गन्तव्य स्थल पर पहुँच कर नायिका के समक्ष सुनाए गए संदेश- इन सभी के वर्णन व चित्रांकन में काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगाररस का सर्वाधिक एवं प्रकृष्टरूपेण परिपाक हुआ हैं। यूं तो प्रसंगोपात्त अन्य रसों की उद्भावना भी काव्य में हुई है, परन्तु चूँकि यह समग्र काव्य विरह की आधारभूमि पर टिका हुआ है, आद्योपांत उसी पर आधारित है, अतैव काव्य का प्रमुख रस, जिसे अंगीरस भी कहा जाता है, विप्रलम्भ श्रृंगाररस हो गया है, जो कि श्रृंगाररस का ही भेद है।

साहित्यदर्पण में इसका निरूपण इस प्रकार मिलता है-

विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष, द्विविधो मतः।।

तत्र- यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।[2]

अर्थात् श्रृंगाररस- विप्रलम्भ एवं संभोग- इस प्रकार दो प्रकार का माना गया है। इनमें से विप्रलम्भ श्रृंगारका लक्षण है- रति को अतिप्रवृद्ध है, किन्तु प्रिय को किसी कारण से प्राप्त नहीं हो पाए, वहाँ विप्रलम्भ अथवा वियोग श्रृंगारहोता है। अर्थात् प्रेम होने के बावजूद नायक एवं नायिका वियुक्त होकर रहने की विवशता अथवा वियोग की कारणभूत किसी भी बाधा के चलते वे एक-दूसरे के प्रेम को प्राप्त न कर सकें, तो वहाँ वियोग श्रृंगार की स्थिति होती है।

अभिनव-मेघदूतम् में आद्योपांत नायक-नायिका की एक-दूसरे से विलगता देखी गई है, अतैव एक-दूसरे से अत्यधिक प्रेम करने वाले उनकी विरही मार्मिक दशा का वर्णन अनेक पद्यों में मिलने और वहाँ इस रस का चरम परिपाक होने से काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगारकी सुन्दर व मार्मिक सृष्टि इस काव्य को विप्रलम्भ श्रृंगारका सुंदर निदर्शन बनाती है। जैसा कि प्रायः सभी दूतकाव्यों में देखा जाता है कि वे नायक-नायिका के वियोगाधारित होते हैं और अपना संदेश किसी चेतन-अचेतन दूत द्वारा प्रेमीजन के पास पहुँचाते हैं, तद्वत् ही प्रस्तुत काव्य में भी नायक द्वारा मेघ को संदेशवाहक दूत के रूप में नियुक्त कर जब उसके समक्ष स्व-चिर-विरहिणी पत्नी की विरह व्याकुल दशा और प्रिया पत्नी के वियोग में स्वयं की दशा को अभिव्यक्त किया जाता है, तब ऐसे विभिन्न पद्यस्थलों में विप्रलम्भ श्रृंगारकी अभिव्यंजना मिलती है। यथा- काव्य के प्रारम्भ में ही नायक का यह कथन **"स्मृत्वा भार्यां चिरविरहिणीं विद्यमानां विदूरे। जातश्चिन्ताकुलमतिरसौ..... जलदं प्रावृषेण्यं ददर्श।।"**[3] - नायिका की चिरविरहावस्था और आकाश में मेघों को देखकर उद्दीप्त हुई नायक की नायिका के प्रति चिंता एवं विरहव्याकुल दशा का सूचक होने से वियोग शंृगाराभिव्यंजक है। इसी प्रकार- **"अस्मिन् कार्यव्यतिकरवशाद् दीर्घकालं निरुद्धः स्मारं स्मारं विरहविकलां गेहिनीं चिन्तितोऽस्मि।।"**[4] यहाँ भी नायक द्वारा दीर्घकाल तक अर्थात् कार्यसिद्धि होने तक अपनी कर्तव्यपरायणता का निर्वहन करते हुए परदेश में नायिका से दूर रहने की विवशता का और बार-बार अपनी प्रिया पत्नी का स्मरण कर उसके प्रति चिंतित होने का कथन मेघ के समक्ष किया गया है, अतैव जैसा कि विप्रलम्भ श्रृंगारके लक्षण में कहा गया है कि परस्पर प्रकृष्ट प्रेम के होने पर भी किसी कारण या बाधा के चलते प्राप्त न हो, तो वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगारकी स्थिति होती है- तदनुसार ऐसी ही स्थिति उपर्युक्त पंक्तियों में द्रष्टव्य है- इस प्रकार काव्य के आरम्भ में उद्भूत हुआ यह वियोग श्रृंगार आगे की कथा में कई पद्यों में इतना अधिक परिपुष्ट हो गया है कि काव्य के अंगीरस के रूप में स्थान पा गया है, ऐसे स्थल उत्तरमेघ में देखे गए हैं, जहाँ कि मेघरूपी दूत को गन्तव्य स्थल- काश्मीर देश की राजधानी प्रवरपुर में जाकर नायिका के समक्ष नायक का संदेश सुनाना है। वहाँ जब वह नायिका से मिलेगा तो विरह पीड़िता उसकी स्थिति कितनी मार्मिक हुई है, जिसे नायक दूर रहकर प्रत्यक्षवत् देख-समझ रहा है तथा साथ ही वह नायक की विरहदशा का वर्णन नायिका के समक्ष करेगा- इन्हीं के चित्रण में कुछ पद्यों में विप्रलम्भ श्रृंगारका चरम परिपाक हुआ है। यथा- नायक के विरह में नायिका इतनी अधिक व्याकुल रहती है कि उसने समस्त श्रृंगार-प्रसाधनों का त्याग कर दिया है और एक वेणी धारण किए हुए रहती है, विरह में उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया है, अतैव पहले जैसी सुंदरता अब उसकी नहीं रही। यहाँ विरह में कृशकाय नायिका की तुलना ग्रीष्म ऋतु में सूखी हुई या अत्यधिक कृशकाय हुई नदी से की है, यह विरहातिरेक का सूचक है-

भुञ्जाना या विरसकबलान् भोजयित्वा समस्तान्
श्वश्रूं वृद्धां श्वसुरमनिशं साधु शुश्रूषमाणा।
दूरस्थास्मद्विरहपिशुनामेकवेणीं दधाना
ग्रीष्मक्षीणा सरिदिव भजेन्नाऽधुना पूर्वशोभाम्।।[5]

यहाँ रस निष्पत्ति की प्रक्रिया को भरतमुनि के रससूत्र- **"तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पनिष्पत्तिः।"**[6] अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से उत्पन्न रस को देखें तो उपर्युक्त पद्य में पति से प्रगाढ़ प्रेम करने वाली नायिका आलम्बन विभाव है, जो कि अपने प्रियतम से दूर है और विरह की पीड़ा भोग रही है- **"दूरस्थास्मद्विरह"** पद से यह स्पष्टतः सूचित भी हो रहा है। दूर देश में रहने के कारण घर में प्रियतम की अनुपस्थिति, विरह की चिर अवधि, शारीरिक क्षीणता एवं विरहानुकूल समग्र परिवेश व दशा उद्दीपन विभाव हैं। नायिका के मन में उत्पन्न भावों का बाह्य चेष्टाओं के रूप में अभिव्यक्त होना यथा- **'या विरस कबलान् भोजयित्वा'** अर्थात् नीरस अन्न के ग्रास खाना- उसकी भोजन में अरुचि, 'एक वेणी दधाना' सौन्दर्य-प्रसाधन त्याग एक वेणी धारण करना तथा शरीर का एवं उसकी कान्ति का क्षीण होकर सौन्दर्यहीन होना इत्यादि अनुभाव हैं, जो प्रिय के वियोग में दुःखी होने से प्रकट हो रहे हैं। चिन्ता, विषाद, दीनता, उत्कण्ठा- इत्यादि व्यभिचारी या संचारी भाव हैं, जो प्रियवियोग में नायिका में संचरण या विचरण कर रहे हैं- इन्हीं विभावादि से परिपुष्ट हुआ 'रति' नामक स्थायी भाव-नायिका की नायक के प्रति रति- विप्रलम्भ श्रृंगारकी सृष्टि कर रही है।

इसी प्रकार प्रस्तुत पद्य में भी कवि ने विरहपीड़िता नायिका की मार्मिक दशा का आलंकारिक वर्णन किया है, जहाँ विरह के तापाधिक्य से झुलसी हुई देहयष्टि की उपमा क्षीणकलाओं वाले प्रतिपदा के चन्द्रमा और दावाग्नि से झुलती हुई लता से दी गई है, जो कि अपने प्रियतम से दूर होने पर आँखें बन्द करके अपने हृदयरूपी दर्पण में उसी का प्रतिबिम्ब देखती हुई ध्यानमग्न रहती है, यहाँ भी वियोग श्रृंगारकी उद्भावना हुई है-

दृष्टेर्यायात् तव विषयतां वल्लभा सा मदीया
चान्द्री लेखा प्रतिपदि यथा दावतप्ता लता वा।
ध्यानासक्ता विजितकमले चक्षुषी मीलयित्वा
दूरस्थं मां हृदयमुकुरे बिम्बितं भावयन्ती।।[7]

यहाँ भी विरहिणी नायिका आलम्बन है, जिसकी दूर देश में निवास कर रहे अपने प्रियतम के प्रति प्रगाढ़ रति है, अतैव विरह का

मूलकारण प्रिय से दूरी है। वहीं, विरहतापाधिक्य के कारण झुलसी हुई देह, जो कि क्षीणकलाओं वाले चन्द्रमा और दावाग्नि से झुलसी लता के समान है, उद्दीपन विभाव है। नायिका का आँखें बंद करना, प्रियतम के ध्यान में मग्न रहना और हृदय में उसकी छवि देखना तथा देह का झुलसना- इत्यादि बाहर प्रकट हुए लक्षण या चेष्टाएँ अनुभाव हैं एवं प्रिय की स्मृति, चिंता अर्थात् ध्यानमग्नता, दुर्बलता, कृशता, दीनता, म्लानता इत्यादि विरह की विभिन्न कामदशाएँ संचारी भाव हैं- इन्हीं से परिपुष्ट हुआ रति नामक स्थायी भाव यहाँ विप्रलम्भ श्रृंगारके रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसी प्रकार **"तामाश्वास्य प्रखरविरहक्लान्तगात्रां वचोभि-र्दग्धप्रायामिव.... ।।"**[8] यहाँ भी नायिका को कठोर विरह से मलिन अंगों वाली कहा गया है, अतैव विप्रलम्भ श्रृंगारकी स्थिति मिलती है।

नायक द्वारा नायिका से दूर रहकर उसके विरह की चिन्ता से व्याकुल और स्वयं भी उसके विरह में पीड़ित होने पर उसके जिस रूप व दशा का अनुभव किया जा रहा है, मेघ द्वारा संदेश भेजने के दौरान उसके समक्ष प्रकट की गई नायिका की दशा के चित्रांकन में भी वियोग श्रृंगारका खूब परिपाक हुआ है। जैसा कि प्रस्तुत पद्य में नायक द्वारा यहाँ मेघ के समक्ष कहा गया है-

पश्यामि त्वां प्रियसखि! मनश्चक्षुषा सम्मुखीनां
पूजामग्नां धवलवसनां बद्धवेणीं प्रभाते।
प्राप्ते मध्यं त्वहनि पितरौ भोजयन्तीं मदीयौ
शेषार्धे मां निभृतनयनां चिन्तयन्तीं ह्रदिस्थम्।।[9]

यहाँ भी विरहिणी नायिका आलम्बन, प्रभात, मध्याह्न एवं उसके उत्तरार्द्ध का समय, जिसमें नायिका की विरहातिरेक के कारण शंृगारहीन दशा- सफेद साड़ी धारण करना, एक वेणी बनाना और प्रिय का ध्यान व स्मरण करना- उद्दीपन विभाव हैं, पूजा व पति के ध्यान में तल्लीनता, श्रृंगार-प्रसाधन का त्याग व सात्त्विक वेशधारण करना, अपने समस्त कर्तव्य निभाते हुए फुर्सत के क्षणों में आँखें बन्द कर पति के ध्यान में मग्न होना अनुभाव हैं और स्मृति, चिंता, ध्यान, धृति, विषाद, उदासी, मलिनता इत्यादि संचारी भाव हैं- इन्हीं से परिपुष्ट होकर रति नामक स्थायी भाव यहाँ विप्रलम्भ श्रृंगारका उद्भावक बन गया है।

प्रस्तुत पद्य में तो विप्रलम्भ श्रृंगारका सर्वाधिक परिपाक इस काव्य में देखा गया है, जहाँ नायिका को विरहातिरेक इतना अधिक पीड़ित कर रहा है कि वह रात में आँसुओं से परिपूर्ण नेत्रों से युक्त होकर बिस्तर रहित भूमि पर लेटी हुई, प्रातःकाल के पहले चन्द्रमा के विरह के कारण मलिन हुई कुमुदिनी वत् मलिन मुखवाली, रात में सूर्य के विरह से कमलिनी के सदृश, पतिविरहजनित दुःख से दुःखित, कुलवधुओं की परम्परा का निर्वहन करने वाली, श्रृंगग्रहणविधि से सतीस्त्रियों में अग्रगण्य चित्रित की गई है-

रात्रौ बाष्पस्थगितनयनां भूमिपृष्ठे शयानां
प्रत्यूषस्थामिव कुमुदिनीं पद्मिनीं वा निशायाम्।
दुःखक्लान्तामपि कुलवधूधोरणीमाचरन्ती-
मग्रे शृङ्गग्रहणविधिना कीर्तनीयां सतीनाम्।।[10]

यहाँ विरह पीड़िता नायिका तथा विरही नायक, जो कि दूर देश में रह रहा है, इस कारण प्रिय से दूरी आलम्बन है तथा रात्रि का समय, एकांत स्थल, प्रिय से बिछोह इत्यादि विरह के अनुकूल परिस्थितियाँ उसे उद्दीप्त करने के कारण उद्दीपन विभाव हैं। नायिका के प्रकट होने वाले विभिन्न भाव, यथा- नेत्रों का अश्रुयुक्त होना, बिस्तर रहित भूमि पर लेटना, तड़पना, मुख का मलिन होना, कमलिनी सदृश मुरझाना, अत्यधिक दुःखी होना तथा विरहजनित व्याकुलता का प्रकट होना- अनुभाव हैं और चिंता, विषाद, उत्कण्ठा (प्रिय मिलन की), निर्वेद- विरह के कारण किसी के भी प्रति आसक्ति का अभाव, शंृगार-त्याग, स्मरण इत्यादि संचारी/व्यभिचारी भाव हैं- इन्हीं से पुष्ट हुआ रति नामक स्थायी भाव यहाँ विप्रलम्भ श्रृंगाररस का चरम परिपाक कर रहा है।

केवल नायिका की विरहदशा के चित्रांकन में ही नहीं, नायक की विरहपीड़ित दशा के चित्रों में भी विप्रलम्भ श्रृंगारका अच्छा परिपाक हुआ है।[11] नायिका से दूरदेशस्थ नायक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु विवश है और चिरकाल बाद ही अर्थात् लम्बे समय बाद कार्यसिद्धि होने के उपरान्त ही नायिका से मिल सकेगा-

"मत्वा तस्यां सदसि नृपतेः कार्यसिद्धौ विलम्बं स्मृत्वा भार्यां..... ।।"[12] इस दौरान वह नायिका का स्मरण करते हुए उसकी चिंता और विरह से पीड़ित है। नायक द्वारा मेघ को दिए गए संदेश की अभिव्यक्ति में नायक ने अपनी मार्मिक दशा प्रकट की है, जिसे कि मेघ को नायिका के समक्ष जाकर बतलाना है, उन पद्य स्थलों पर विप्रम्भ श्रृंगारखूब परिपुष्ट हुआ है। यथा-

कृत्वा सह्यक्षितिधरसुतावीचिमालाविहारं
सङ्गच्छन्तो मलयकटके वाटिकां चन्दनानाम्।
वाता एते सुदति! दधतः सौरभं केतकानां
प्रत्यङ्गं मे प्रलयदहनज्वालकल्पा लगन्ति।[13]

यहाँ नायक की नायिका के प्रति प्रगाढ़ व प्रवृद्ध रति है और विवशतावश वह अपनी प्रियतमा नायिका से दूर है। इस प्रकार नायिका से वियुक्त हुआ नायक आलम्बन तथा 'मलयकटके वाटिकां चन्दानाम्.... सौरभं केतकानां' अर्थात् कावेरी की तरंगों में विहार करके, चन्दन के वनों में भ्रमण करके तथा केतकी पुष्पों के पराग को धारण करके बहने वाली हवाएँ, जो कभी सुखदायक हुआ करती थीं, वे ही अब विरह के दौरान नायक के अंग-अंग में प्रलयाग्नि की लपटों के समान दाहक लग रही हैं- अतैव उद्दीपन विभाव हैं। नायक की अपनी प्रिया के प्रति व्याकुलता, शरीर का जलना, विरह वेदना का प्रकट होना, मानसिक संताप इत्यादि अनुभाव हैं और व्याधि-शारीरिक दाह से उत्पन्न पीड़ा, चिंता, औत्सुक्य, दीनता, स्मृति, ग्लानि, मोह इत्यादि संचारी भाव हैं। ये ही विभाव-अनुभाव-संचारी भाव यहाँ रति नामक स्थायी भाव के साथ विप्रलम्भ श्रृंगारकी निष्पत्ति कर रहे हैं। नायिका के विरह में नायक की दशा इतनी अधिक दैन्यपूर्ण और मार्मिक हो चुकी है कि वह आकाश में नए मेघ के शब्द को कामदेव के वाद्य के समान समझ रहा है, जिसे सुनकर मूच्छित हो गया है और फिर कुछ समय बाद चेतना प्राप्त कर नायिका के लिए संदेश भिजवाता है-

श्रुत्वाऽऽकाशे मदनपटहं नूत्नजीमूतनादं
प्राप्तो माहं शशिमुखि! मया प्राहिणोद् वाचिकं ते।।[14]

इस प्रकार यहाँ आकाश में नवीन मेघों की ध्वनि नायक के विरह की उद्दीप्त कर रही है। नायक का मूच्छित होना, पुनः चेतना प्राप्त करना तथा संदेश भिजवाना अनुभाव हैं। यहाँ स्पष्टतः विरहातिरेक के चलते विप्रलम्भ श्रृंगारकी अभिव्यंजना हुई है। नायक द्वारा विरह वेदना को यत्नपूर्वक भुलाने का भी प्रयास किया जाता है, इस हेतु वह नायिका के अप्रतिम रूप-सौन्दर्य की छवि स्व मनः-मस्तिष्क में देखता है, यहाँ भी नायक की विरह पीड़ा की अभिव्यक्ति में विप्रलम्भ श्रृंगारद्रष्टव्य है- **"चन्द्रे किञ्चिद् वदनसुषमां..... पश्यन् यत्नात्तव विरहजां वेदनां सङ्क्षिणोमि।।"**[15] इसी प्रकार **"आसीत्सुभ्रूः परिणय ..... क्रीडाकाले कृतककलहं कुर्वतीं यन्मयाऽपि।।"**[16] यहाँ भी नायिका से वियुक्त हुए नायक द्वारा पूर्व में मिलन के दिनों की सुखद स्मृतियों का स्मरण किया जाता है, परन्तु वर्तमान में अब वे ही मिलन की स्मृतियाँ उसके विरह को और अधिक उद्दीप्त कर रही हैं और मिलन अभी दुर्लभ बना हुआ है- अतैव यहाँ भी विप्रलम्भ श्रृंगारकी सृष्टि हुई है।

वर्षाऋतु के दौरान बादलों से घिरा हुआ, धीर व गम्भीर मेघगर्जन वाला आकाशीय परिदृश्य नायिका से वियुक्त हुए नायक की विरह वेदना को और अधिक बढ़ा रहा है, ऐसे में वह स्वयं तो विरह की पीड़ा को भोग ही रहा है, नायिका की भी उसे चिंता है, अतैव इन्हीं सब बातों का उल्लेख करते हुए वह मेघ द्वारा संदेश भेजकर अपनी प्रिया का ढाढस बँधवाने की बात अपने संदेश में कहता है-

मेघच्छन्नं गगनमभितो वीक्ष्य वेल्लद्बलाकं
श्रुत्वा धीरं विरहिहृदयत्रासदं गर्जितं च।
दूरस्थां त्वां ध्रुवमशरणां चिन्तयन् विप्रयुक्ता-
माशंसामि त्वयि जनयितुं तन्वि! धैर्यप्रवृत्तिम्।।[17]

इस प्रकार उपर्युक्त पद्य में नायक की विरह दशा, उद्दीपन के आकाशीय परिदृश्य रूपी साधन और कारणों द्वारा उसका और अधिक उद्दीप्त होना, नायक की नायिका के प्रति चिंता इत्यादि प्रस्तुत पद्य को विप्रलम्भ श्रृंगारप्रधान बना रहे हैं तथा नायक द्वारा स्पष्टतः कहा भी गया है कि वह वर्षाकालीन समय एवं आकाशीय वातावरण विरहियों के हृदय को कष्ट देने वाला है। **"द्वित्रान् मासान् वरतनु! परं दुःसहो मे वियोगः सोढव्यस्ते तदनु.....।।"**[18] यह पद्य भी विप्रलम्भ श्रृंगारका अभिव्यंजक है, जहाँ नायक द्वारा अपने संदेश में नायिका से दो-तीन महीने और वियोग को सहन करने और तदुपरांत मिलन होने का आश्वासन दिया गया है। इसी प्रकार भावी मिलन की आशाओं में वर्तमान विरहदशा और उससे उत्पन्न दुःख तथा उसे सहन करने के धैर्य व आश्वासन की अभिव्यक्ति करने वाले पद्य भी विप्रलम्भ श्रृंगारके सूचक हैं। यथा- **"चिन्तां सर्वा जहिहि न भव क्लेशपात्रं मदर्थे.....।।"**[19] एवं **"कञ्चित्कालं गमय विषमं बिभ्रती विप्रयोगम्। पश्चाद्भावी सुखयति भृशं सम्प्रयोगो वियोगाद्.....।।"**[20] तथा **"सन्तन्वन्तः परिमलभरं चित्तमुत्कण्ठयन्ति।।"**[21] इन पद्यों में परस्पर वियुक्त नायक-नायिका की विरह दशा, विरह से उत्पन्न दुःख, मिलन की उत्कण्ठा एवं भावी मिलन की आशा की अभिव्यक्ति में विप्रलम्भ श्रृंगारकी उद्भावना हुई है।

निष्कर्ष- आधुनिक दूतकाव्यों की परम्परा में महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े द्वारा रचित अभिनव-मेघदूतम् विभिन्न रसों से सराबोर एक सफल दूतकाव्य है। 'काव्य की आत्मा रस' के अनुसार प्रस्तुत काव्य में अंगी या प्रमुख रस के रूप में विप्रलम्भ श्रृंगारकी सुंदर उद्भावना हुई है। काव्य का कथानक नायक-नायिका के विरह पर आधारित है, अतः काव्य की आधारभूमि ही विप्रलम्भ श्रृंगारहोने से यह काव्य का अंगीरस है, जो कि आद्योपांत अनेक पद्यों में परिपुष्ट हुआ है। पूर्वमेघ के प्रारम्भिक पद्यों में नायक की विरहदशा और उसके द्वारा दूर देश में रह रही चिर-विरहिणी प्रिया पत्नी की चिंता से आरम्भ हुआ यह विरही परिदृश्य उत्तरमेघ में अत्यधिक परिपक्व होकर नायिका की विरह में दीन, मलिन, क्लान्त स्थिति के चित्रांकन में, मेघ द्वारा नायिका के समक्ष प्रस्तुत की गई नायक की मार्मिक विरहदशा वाले पद्यों में खूब देखा गया है। अतैव निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य का अंगीरस विप्रलम्भ श्रृंगारहै, जिसकी सफल नियोजना काव्य में हुई है।

संदर्भ सूची-

[1] आचार्य, विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद/1
[2] वही, तृतीय परिच्छेद/क्रमशः 186-87 का उत्तरार्द्ध एवं पूर्वार्द्ध
[3] शेवड़े, वसन्त त्र्यम्बक, अभिनव-मेघदूतम्, पूर्वमेघ/2
[4] वही, पूर्वमेघ/5
[5] वही, उत्तरमेघ/42
[6] आचार्य, भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 6/33 का उत्तरार्द्ध
[7] अभिनव-मेघदूतम्, उत्तरमेघ/43
[8] वही, उत्तरमेघ/47
[9] वही, उत्तरमेघ/53
[10] वही, उत्तरमेघ/54
[11] वही, उत्तरमेघ/49, 50, 51, 52, 55, 58, 59
[12] वही, पूर्वमेघ/2, अन्य साम्य स्थल- पूर्वमेघ/5
[13] वही, उत्तरमेघ/50
[14] वही, उत्तरमेघ/49
[15] वही, उत्तरमेघ/52
[16] वही, उत्तरमेघ/55
[17] वही, उत्तरमेघ/59
[18] वही, उत्तरमेघ/60
[19] वही, उत्तरमेघ/61
[20] वही, उत्तरमेघ/63
[21] वही, उत्तरमेघ/51 का चतुर्थ चरण

ग्रन्थ सूची-

1. शेवड़े, वसन्त त्र्यम्बक (1990) त्रिपाठी, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (सं.), अभिनव-मेघदूतम्, वाराणसी: चैखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
2. विद्यालंकार, निरूपण (संपा.)(1994), साहित्यदर्पण, विश्वनाथा-चार्यकृत, मेरठ: साहित्य भण्डार।
3. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल (वि.सं. 2040), नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, वाराणसी: चैखम्बा संस्कृत संस्थान।